HindiTech
A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal

संरचनावाद और अनुवाद

शैलेन्द्र कुमार सिंह

tosksinghnehu@gmail.com

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भाषाविज्ञान विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग

अनुवाद और युगबोध

अनुवाद का अपना वाद ढूँढ़ना एक कठिन कार्य है। क्या अनुवाद के माध्यम से कोई वाद उत्पन्न हुआ है? यह खोज पाना भी बहुत दुष्कर है। अगर इसके माध्यम से कोई वाद फलित भी हुआ है, तो वह बहुत बाद में। अनुवाद को वाद के युगबोध से लाभ हुआ है। विभिन्न वादों ने युगबोध की धाराएँ प्रवाहित करने में सफलता प्राप्त की हैं, जिनके प्रभाव में अनुवाद का आना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है, लेकिन अनुवाद में वाद का भाव बाद में तय होता है और इस अर्थ में अनुवाद को बाद का वाद कहना गलत नहीं होगा।

संरचनावाद का मूल

अनुवाद में व्यापक वाद की प्रविष्टि संरचनावाद से होती है। हालाँकि संरचनावाद कभी अनुवादनिष्ठ सिद्धांत नहीं रहा है। यह अकादमिक जगत का पहला आधुनिक एवं व्यवस्थित पड़ाव है, अतः अनुवाद का इस चपेट में आना स्वाभाविक ही है। मसलन् इसने अनुवाद पर अपना ध्यान विशेष तौर पर कभी भी केंद्रित नहीं किया है। इस वाद को मानने वाले और इसके समर्थक विद्वानों ने इसे आगे बढ़ाने की कोशिश अवश्य की है, अतः संरचनावाद के कुछ फलकों को अनुवाद से जोड़कर देखा जा सकता है। एक निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह वाद इस प्रक्रिया के लिए कितना उपयोगी और कितना अनुपयोगी है। अनुवाद के लिए उपयोगिता और अनुपयोगिता की दृष्टि से यह वाद दोनों के मध्य में है। अगर इससे

अनुवाद को बहुत फायदा नहीं हुआ है, तो निःसंदेह इसने अनुवाद का बहुत नुकसान भी नहीं किया है। ऐसे कई बुनियादी प्रश्नों को उठाया जा सकता है, जिनका समाधान इस वाद के पास नहीं है, लेकिन अनुवाद के दृष्टिकोण से संरचनावाद को गलत और सही नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि अनुवाद इस सिद्धांत के केंद्र में कभी रहा ही नहीं है। ऐसे में, इसके सापेक्ष एक गहन विमर्श किया जा सकता है।

संरचवादी विचारधारा में शब्द और संकेत को मूलतः पर्याय के रूप में माना गया है। सस्यूर के अनुसार भाषिक व्यवस्था में 'everything depends upon relations' (1983:121) होता है। कोई भी संकेत अपने आप से अर्थ को निर्मित नहीं करता है, बल्कि अन्य संकेतों के संबंध से प्रतिफलित होता है। 'संकेतक' और 'संकेतित' दोनों परस्पर पूरक हैं। यही संबंध संकेत को मान प्रदान करता है। अपने संदर्भ से स्वतंत्र संकेत का कोई अपना स्वतंत्र मान नहीं होता है। सस्यूर के भाषिक मान (Value) की संकल्पना अनुवाद हेतु समस्या पैदा कर सकती है। यह संभव है कि दो भाषाओं के संकेतों के अर्थ में समानता हो, परंतु मान के स्तर पर समानता नहीं हो सकती है। सस्यूर के अनुसार- "The French word 'mouton' may have the same meaning as the English word 'Sheep'; but it does not have the same value. There are various reasons for this, but in particular the fact that the English word for the meat of this animal, as prepared and served for a meal, is not sheep but mutton. The differences in value between sheep and mouton are based on the fact that in English there is also another word mutton for the meat, whereas mouton in French covers both." (1983, 112)

सस्यूर ने चेस खेल की सादृश्यता को भाषा में लाने की कोशिश करते हुए बताया कि प्रत्येक गोटी का मान उसके चेसबोर्ड के प्राप्त स्थान पर निर्भर करता है। किसी भी संकेत का मान अन्य संकेतों के संबंधों के समग्र व्यवस्था में निर्धारित होता है। प्रतीक का सीधा संबंध वस्तु से नहीं है। शब्दों और विचारों में सहजातीय संबंध नहीं है। संरचनावाद शब्द और विचार के नैसर्गिक संबंधों को नकारता है। भाषा की यादृच्छिकता सस्यूर के सिद्धांत का मूल मंत्र है। मसलन् शब्द और अर्थ के बीच का संबंध किसी तार्किक और नैसर्गिक नियमावलियों के कारण नहीं है, बल्कि माना हुआ है। इन्हीं कारणों से सभी भाषाओं में

किसी वस्तु और भाव को जताने और बताने के लिए अलग-अलग शब्द हैं। अँग्रेजी के फ्-लै-ग के योग को हिंदी भाषी झंडा समझता है और ऐसा नहीं होता, तो हिंदी शब्द झं-डा का योग न होकर फ्-लै-ग ही होता। अपनी भाषा के अनुसार शब्दों को गढ़ने की प्रक्रिया यहीं से शुरू होती है। ध्वनि-प्रतीक 'संकेतक' का 'संकेतित' संकल्पना से प्राकृतिक संबंध नहीं है। 'लाँग' भाषा का सामाजिक संस्कार है। भाषिक पूर्णता 'लाँग' के बिना संभव नहीं है। इसका आँतरिक संबंध 'परोल' से है, जो भाषा की व्यक्तिगत संपदा है। व्यक्तिगत भाषिक निष्पादन 'परोल' है और सामाजिक परिणति 'लाँग'। 'परोल', 'लाँग' के विपरीत किसी विशेष समय और स्थान में निष्पादित होने वाला व्यक्तिगत, गतिमान और सामाजिक प्रकरण है। 'परोल' भाषाविदों के निरीक्षण के लिए प्रत्यक्ष सामग्री है। उच्चरित ध्वनि 'परोल' का पूर्ण उदाहरण है। ध्वनियों का अंतर्निहित और बाह्य रूप, जिसे वक्ता और स्रोता आपस में समझने और अपनाने लगता है, 'लाँग' है। इस अवस्था में पहुँचकर भाषा एक व्यक्तिगत संपति न होकर सामाजिक यथार्थ का हिस्सा बन जाती है। परोल एक ओर जहाँ मुक्त, व्यक्तिगत, पदार्थ-मनोवैज्ञानिक, पारिश्रमिक एवं अनुभूतिपरक है, वहीं दूसरी ओर 'लाँग' सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, निर्धारित एवं व्यवस्थापरक प्रकरण है। अभिव्यक्ति और अर्थ की दृष्टि से अर्थ और रूप के अंतर्संबंधों को दो तरीकों से समझा जा सकता है। विचार, मनोविकार, भावनाएँ आदि भाषिक तात्पर्यता से जुड़ीं हैं, वहीं दूसरी ओर रूप भाषिक इकाईयों के अंतर्संबंधों को संरचना के माध्यम से प्रतिबिंबित करता है। 'रूप' से तात्पर्य उन तमाम भाषिक इकाईयों है, जो आपस में जुड़कर शब्द बनातीं हैं। 'तात्पर्य' और 'रूप' का दरअसल अंतर वही है, जो सिद्धांत और यथावत् अभिव्यक्ति में है। स्पष्ट शब्दों मे कहें, तो भाषा की प्रत्येक इकाई रूप है और भाषिक व्यवस्था तात्पर्य है। भाषिक रूप, ध्वनि और अर्थ के बीच तादात्म्यता का सूत्र स्थापित करता है। भाषाई रूपों और अर्थों का अध्ययन समकालिकता और ऐतिहासिकता के द्विधारी स्तरों पर किया जा सकता है। भाषा का विशिष्ट कालिक अध्ययन 'सिनक्रोनिक' पद्धति के तहत किया जाता है और कालक्रमिक अध्ययन 'डाइक्रोनिक' पद्धति के अंतर्गत भाषा के किसी विशेष काल का अध्ययन करना सिनक्रोनिक या वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का कार्य है। समय विशेष में भाषिक समुदाय के भाषा-प्रयोगों का अध्ययन वर्णात्मक भाषाविज्ञान की खोज का मुख्य विषय है। भाषा के विकास का कालक्रमिक अध्ययन डाइक्रोनिक या ऐतिहासिक भाषाविज्ञान करता है।

भाषा के स्थाई भाव का अध्ययन सिनक्रोनिक या वर्णनात्मक भाषाविज्ञान करता है, वहीं दूसरी ओर भाषा के परिवर्तित रूप, विकास का ज्ञान, स्थानांतरण आदि का अध्ययन डाइक्रोनिक या ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का क्षेत्र है। सस्यूर ने भाषिक इकाईयाँ के बीच होने वाले संरचनात्मक अंतर्संबंधों को दो रूपों में स्थापित करने की कोशिश की है- निर्देशात्मक और रेखिकीय। भाषिक इकाईयों के बीच घटित होने वाला रेखिकीय अंतर्संबंध सहचारक्रमी है। शब्द वाक्य के रूप में रेखिकीय संबंधों के कारण परिणित होता है और वाक्य का निर्माण रेखिकीय और संगठनात्मक प्रक्रिया के द्वारा ही संभव होता है। भाषिक इकाईयों के बीच का संबंध एक-दूसरे के अंतर के बीच अवस्थित अंतर्संबंधों पर भी निर्भर करता है। इस संबंध में सस्यूर का कुछ यूँ कहना है- "In the syntagm a term acquires its value because it stands in opposition to everything that precedes or follows it or to both" (Saussure 1959:123). निर्देशात्मक संबंध तुलनात्मक या चयनात्मक है। सामान्य शब्द मनुष्य के मस्तिष्क में सुरक्षित होता है और उनका प्रयोग सुविधा के अनुसार वह करता है, जैसे- 'सीखना' शब्द के प्रयोग से मनुष्य के मस्तिष्क में अवचेतन के स्तर पर अध्ययन, ज्ञान, अनुशासन इत्यादि शब्द आने लगता है। सभी शब्द किसी-न-किसी तरह एक-दूसरे से अर्थ और सोच के स्तर पर जुड़ें हैं। इसलिए यह संबंध अनुषंगिकता का है। इस संदर्भ में यह संबंध प्रोक्ति के बाहर का है और संबंध रेखीय नहीं है। कुछ मायनों में यह संबंध शून्य में घटित होने वाला है और लंबरूपी है। इसका स्थान मानव-मस्तिष्क है। यह संबंध स्वनिम, रूपिम और शब्दों के बीच घटित होने वाला है। सहचारक्रमी संबंध उपस्थिति का द्योतक है और क्षैतिजीय वितरण को दर्शाता है। यह संबंध ईकाईयों के मध्य स्थाई संबंधों और वाक्य में परिणित होने वाले क्रम को दर्शाता है, जैसे-

हमलोग — कल — आ — सकते — हैं।

वह — बाद — में — आ — सकता– है।

वह — शीघ्र– ही — यहाँ—-से — जाएगी।

तुम –अभी — सो– सकते –हो।

वह — कल — दिल्ली — से — लौटा — है।

सामान्य भाषाविज्ञान वाक्य को ही भाषा की अधिकतम इकाई मानता है, इसलिए संरचना का अंतिम पड़ाव भी यही है। भाषा अपने मूल में व्यवस्था है, जिसकी आँतरिक संरचना रूपात्मक-संरचनात्मक है, इसलिए भाषा को प्रोक्ति के रूप में देखने की कोशिश नहीं की गई है। उदाहरणार्थ हिंदी की भाषिक इकाईयों के संयोजन को इस रूप में दर्शाया जा सकता है-

स्वनिम – प, फ, ब, म।

रूपिम – लड़ का, लड़ के, लड़ कों।

शब्द – सोहन।

समूह – राम घर में है।

उपवाक्य – जब मैं शिकार पर था, एक शेर को देखा।

वाक्य – राम ने जंगल में एक शेर को मारा।

निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि आधुनिक भाषाविज्ञान में 'संकेतक' और 'संकेतित' का अंतर्संबंध लोकगाथा की तरह है, जिसकी लोकप्रियता की छाप अकादमिक जगत के अनेक प्रसंगों में अमिट रही है। संकेत सच्चे अर्थों में स्रोता और वक्ता की उपस्थिति को अनिवार्य बनाता है। अनुवाद में औपचारिक समतुल्यता का सिद्धांत इसी से प्रेरित है। जेनेवा और अमेरिकी संरचनावादियों ने यह बात स्वीकार कर ली थी कि गत्यात्मक (Dynamic) समतुल्यता अनुभूति की प्रभावोत्पादकता पर निर्भर करती है। शायद नायडा ने इन्हीं कारणों से समायोजन (Adjustment) और अनुकूलन (Adaptation) को भाषा और अनुभव के साथ तालमेल की प्रकिया मानी है। अधिमिश्रण (Modulation) में यह माना जाता है कि संकेतित दोनों भाषाओं में आमतौर पर समान ही होता है, लेकिन अभिव्यक्तियों में साँस्कृतिक विविधताएँ होती हैं।

अनुवाद की पहचान

भाषिक प्रतीकों की इकाईयों के रूपांतरण की प्रविधि को संरचनावादी विमर्श की शुरूआत मानी जा सकती है। संरचनावाद के अनुसार भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है, इसलिए अनुवाद को दो भाषाओं की अंतर-संकलित प्रतीकात्मक व्यवस्था मानना उचित होगा। अनुवाद प्रतीकों का रूपांतरण है और यह भिन्न

इकाईयों पर संपन्न होता है। अनुवाद एक विशुद्ध भाषावैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसे भिन्न स्तरों पर निष्पादित किया जाता है। अनुवाद स्रोत-भाषा का लक्ष्य-भाषा में पुनर्कोडन है, जो शब्द, शब्द-समूह, वाक्य-विन्यास, वाक्य और पाठ किसी भी स्तर पर संभव है। अनुवाद की प्रक्रिया स्रोत-भाषा की इकाईयों के क्रमिक संयोजन का लक्ष्य-भाषा में पुनर्संयोजन से संपन्न होती है। स्वाभाविक है कि अनुवाद की प्रक्रिया को संपन्न कराने हेतु अनुवादक को स्रोत-भाषा के कोडित इकाईयों को लक्ष्य-भाषा में पुनर्कोडित करना होगा। विनय और डारबेलेण्ट (1958) ने सस्यूर के भाषिक प्रतीक संबंधी महत्त्वपूर्ण मान्यताओं को केंद्र में रखकर अनुवाद पर नई दृष्टि सामने रखने का प्रयास किया है। हालाँकि दोनों ने शब्द को अनुवाद की इकाई मानने से साफ इनकार किया है, क्योंकि अनुवाद का उद्देश्य अर्थ-क्षेत्र संरक्षण है न कि भाषिक संकेतकों के औपचारिक स्वरूप का संरक्षण। दोनों ने कोशीय और वैचारिकी इकाईयों की बात की। इनके अनुसार इकाई "the smallest segment of the utterance whose signs are linked in such a way that they should not be translated individually (1958/1995)। दोनों की सोच संरचनावाद से कितनी साम्यता रखती हैं, एक विचारणीय पक्ष है।

रूपांतरता कोडीकरण और विकोडीकरण की दोहरी प्रक्रियाओं से गुजरती है। इस दृष्टि से इसे संप्रेषण की दोहरी प्रक्रिया के रूप में समझा जाना चाहिए, अर्थात् यह माना जा सकता है कि दो भाषाओं की प्रतीक-व्यवस्था अर्थ को समान रूप से अभिव्यक्त कर सकती है। लेकिन संरचनावाद को इस बात से खुद ही गंभीर आपत्ति है। भाषाओं में जहाँ एक ओर सार्वभौमिकता के लक्षण होते हैं, वहीं दूसरी ओर भाषा के नितांत निजी अभिलक्षण भी होते हैं।

याकोब्सन ने प्रतीक-व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में अनुवाद को तीन वर्गों में बाँटा है-

1. **अंतःभाषिक अनुवादः-** एक भाषा की प्रतीक-व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ को उसी भाषा की अन्य प्रतीक-व्यवस्था में अंतरण को अंतःभाषिक अनुवाद कहते हैं। यहाँ भाषा एक ही होती है, सिर्फ प्रतीकों की व्यवस्था बदल जाती है। इसमें अभिव्यक्ति का एक और लहजा या शैली उसी भाषा में अनुवाद द्वारा प्राप्त होती है। यह अभिव्यक्ति का एक और माध्यम है, जो प्रतीकों की विविध

सजावटों से संपन्न होता है। इसे शब्दों की पुनुरूक्ति (Rewording) भी कहते हैं, जिसमें अभिव्यक्ति की छूट बहुत हद तक लेखक के पास सुरक्षित होती है। व्यक्ति अनुवादक की विशिष्ट भूमिका में न होकर लेखक की भूमिका में अधिक होता है। यह प्रक्रिया परिभाषात्मक और व्याख्यात्मक है। इसमें संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना भी संभव है। यह वस्तुतः भावों की व्यवस्था भी है।

भाषा-1 : प्रतीक व्यवस्था {अर्थ }।

भाषा- 1 : वही प्रतीक व्यवस्था {अर्थ }।

जैसे- इस घर का स्वामी मोहन है।

यह मोहन का घर है।

2. **अंतरभाषिक अनुवादः-** एक भाषा की प्रतीक-व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ का दूसरी भाषा की प्रतीक-व्यवस्था द्वारा अंतरण की प्रक्रिया को अंतरभाषिक अनुवाद कहते हैं।

भाषा-1: प्रतीक-व्यवस्था {अर्थ }।

भाषा-2: प्रतीक-व्यवस्था {अर्थ }।

जैसे- Ram goes to his house.

राम अपने घर जाता है।

3. **अंतरप्रतीकात्मक अनुवादः-** एक भाषिक प्रतीक-व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ का अन्य माध्यम द्वारा उसी भाव को अभिव्यक्त करना अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद है। यहाँ भाषिक प्रतीकों का अंतरण नहीं होता, बल्कि अन्य माध्यमों के द्वारा उसी भाव का परिवर्तन होता है। वाचिक प्रतीकों का अवाचिक प्रतीकों में रूपांतरण इसी कोटि का उदाहरण है, जैसे- चित्र, नृत्य, पेटिंग, नाटक आदि।

आमतौर पर दो भाषाओं के प्रतीकों के बीच सटीक समतुल्यता स्थापित नहीं की जा सकती है, फिर भी एक भाषा के संवाद को दूसरी भाषा में पहुँचाया अवश्य जा सकता है। यद्यपि अनुवाद में पूर्ण समतुल्यता की परिकल्पना करना असंभव है। ऐसे में यह कार्य आसान नहीं होता है। हालाँकि अनुवाद की संभावनाओं से

याकोब्सन ने इनकार नहीं किया है। निष्कर्षतः अनुवाद दो भाषाओं और पाठों के बीच समतुल्यता स्थापित करने के निश्चित लक्ष्यों और उद्देश्यों के साथ स्रोत-भाषा के अर्थ का लक्ष्य-भाषा में उत्पादित करने का एक अंतरभाषिक स्थानांतरण प्रक्रिया है। अनुवादक स्रोत का लेखक नहीं होता है, बल्कि जो कहा जा चुका है, उसी को पुनर्स्थापित करता है। उन्होंने यह भी माना है कि अंतरभाषिक स्थानांतरण की प्रक्रिया ही दरअसल अनुवाद की उचित प्रक्रिया है। मूलपाठ और अनूदित पाठ एक-दूसरे के समरूपी नहीं होते हैं, बल्कि समतुल्य अवश्य हो सकते हैं।

वृहत विमर्श

सपीर भाषा को समाज-निर्देशिका मानते हैं। मनुष्य अपना अनुभव भाषा के माध्यम से ग्रहण करता है। दो भाषाएँ कभी भी एक समान नहीं होती और फर्क सिर्फ संरचनाओं में नहीं होता, बल्कि सामाजिक यथार्थ में भी होता है, जिसे भाषाएँ ही सहेजती हैं। सपीर के अनुसार "No two languages are ever sufficiently similar to be considered as representing the same social reality. The worlds in which different societies live are distinct worlds, not merely the same world with different labels attached...."

संरचनावाद की दृष्टि अचूक अनुवाद की परिकल्पनाओं पर जा टिकती है। अतः अनुवाद एक अत्यंत कठिन कार्य है। इसे सदैव अप्राप्ति में जीने की आदत है। अप्राप्ति की भरपायी सदैव नहीं जा सकती। संरचनावाद भाषाओं की आपसी भिन्नताओं को समाज-साँस्कृतिक स्तरों पर स्थापित करने का प्रयास करता है। अनुवाद के द्वारा संपूर्ण समतुल्यता की प्राप्ति का स्वप्न एक कोरा सत्य है। ऐसे में यह प्रक्रिया महज दो भाषाओं के बीच नजदीकी कायम करने का एक प्रक्रियात्मक सार्थक प्रयास है। इन्हीं कारणों से संरचनावादियों ने अनुवाद की विविध भाषावैज्ञानिक प्रविधियों पर विशेष बल दिया है। इस प्रक्रिया में आने वाली समस्याएँ उनकी सैद्धांतिकी की केंद्र-बिंदु हैं। उनके समाधान के लिए अनेक नियमावलियाँ दी गई हैं। अनुवाद को विज्ञान मान लिया जाता है और महज कला मानना अनुचित समझा गया। सैद्धांतिक स्तरों पर अनुवाद को इतना बड़ा लाभ पहले कभी नहीं मिला था।

संरचनावाद प्राकृतिक मान्यताओं का पक्षधर नहीं है, क्योंकि जिसे हम प्राकृतिक मानते हैं, वह तो दरअसल अपने मूल में सामाजिक और मानवकृत है। यह भाषा के यादृच्छिक मूल्यों को प्रामाणिक मानता है। संरचना और रचना पर मनुष्य का अधिकार है। यह दोनों ही इकाईयों की संयोजी सार्थकता पर आश्रित है। वाक्य अधिकतम और अंतिम इकाई है, जो लघुतम और अर्थहीन इकाईयों के कार्यदायी समुच्चयों के योग से बना है। अर्थहीनता और अर्थवत्ता दोनों ही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इकाई की अपनी कोई अर्थवान सत्ता नहीं होती है, बल्कि व्यवस्था में समुचित स्थान प्राप्त कर अर्थवान बनती है। हर इकाई अपने मूल में एक-दूसरे से भिन्न होती है। भाषा समाजनिष्ठ, सामुदायिक और एक संस्थानीय यथार्थ है और व्यक्तिगत प्रयोग की स्वतंत्रता सत्ता से सर्वथा परे है। भाषा महज अपनी ऐतिहासिकी में नहीं जीती है, बल्कि वर्तमान में अपने कायदे के अनुसार सँवरती और निखरती है। भाषा को सदैव अपनी ऐतिहासिकी में तलाशना कभी-कभी भ्रम पैदा करता है। सरंचनावाद भाषा को अनंत: एक संरचनात्मक भाषिक व्यवस्था मानता है, जो भाषिक इकाईयों का नियमबद्ध और श्रेणीबद्ध समुच्य है। निर्माण की प्रक्रिया में यह इकाईयों की श्रेणीबद्धता पर सबसे अधिक बल देता है। श्रेणीबद्धता का सीधा तात्पर्य इकाईयों की न्यूनतम से अधिकतम या अधिकतम से न्यूनतम की ओर संयोगात्मक संयोजन है। लेकिन संयोगात्मकता विरोधात्मक होती है। मसलन् अर्थ-निर्माण की प्रक्रिया में इकाईयों का एक-दूसरे से जुड़ना अपेक्षित है, यह आरोपित मधुर मिलन है। जीवन की सच्चाईयाँ भी कुछ इसी तरह सृजित हुई जान पड़ती है। मनुष्य के जीवन में भी अगर स्त्री-पुरुष का विरोधात्मक संयोग न हो, तो समाज की अर्थवान सृष्टि असंभव है।

भाषा यथार्थ को अभिव्यक्त करती है। किसी के बारे मे निश्चित तौर पर सदैव कुछ कहा जा सकता है। सत्य आवश्यक तौर पर विद्यमान होता है और भाषा सत्य की वाहिका होती है। सत्य को सदैव भाषा सँजोए रहती है। शब्द का अपना निश्चित अर्थ होता है, जो भाषा-सापेक्ष होता है। सत्य पूर्णता में स्थापित होता और रहता है। स्वाभाविक है कि भाषिक अर्थ निजवादकता से प्रेरित और संचालित नहीं होता है। भाषा अपनी जरूरतों के अनुसार समझ पैदा करने में सक्षम है। यथार्थ से भाषा को अलग कर नहीं देखा जा सकता है। 'संकेतक' और 'संकेतित' का संबंध समस्या रहित है। पाठ अपनी संरचना और अपना अर्थ सहेजे होता है। बाह्य दुनिया से संपर्क साधने का कार्य भाषा ही करती है। इसमें भाषा प्रतिनिधित्व करती है। यथार्थ की

अपनी एकात्मक सत्ता होती है। किसी एक को किसी दूसरे से उच्च होने का अधिकार है। नियम, संरचना, मूल्य और तर्क की अपनी आँतरिक और बाह्य सत्ता होती है। यथार्थ को प्रश्नों के कठघरे में नहीं खड़ा किया जा सकता। सत्य स्वतः उद्घाटित होता है, इसलिए उसे बार-बार उद्घाटित नहीं किया जा सकता है। समय निर्धारित, आबद्ध और मापनीय होता है। भूत की सम्यक समझ बिना वर्तमान की सही समझ पैदा करना संभव नहीं है। एकात्मता के बिना अस्मिता की तलाश और पहचान नहीं की जा सकती है। भूत का अपना यथार्थ और यथार्थ का अपना भूत होना संभावी है। इस दृष्टि से इतिहास का वस्तुनिष्ठ होना आवश्यक है। इतिहास का काम ही मानव-संस्कृति की यथावत् झलक प्रस्तुत करना। इसका कार्य सिर्फ यथार्थ को निरूपित करना है। इसके द्वारा हम अपनी निरंतरता को जानते और समझते हैं। इतिहास को न तो झूठलाया जा सकता है और न ही भूलाया जा सकता है। हर हाल में हमें इतिहास पर विश्वास करना होगा। मसलन् हम नित्य, निरंतर, अविछिन्न के वृहत संसार में जीते है, जिसका भाषा, संस्कृति और अपना यथार्थ है। भाषा, संस्कृति और यथार्थ के संदर्भ में एक-दूसरे से आर-पार का संबंध हो सकता है। विशेष संदेश के साथ पाठ को पाठक के लिए तैयार किया जाता है। परिणामस्वरूप संदर्भ, संस्कृति, ऐतिहासिक कालक्रम को सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संदर्भों मे समझने की आवश्यकता है, तब निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। निष्कर्ष से अलग कोई और निष्कर्ष नहीं होता है। निष्कर्ष चरम सीमा है। अतः इसे अपर्याप्त कहकर झूठलाया नहीं जा सकता है।

संरचनावाद एवं अनुवाद की प्रक्रिया

एक-दूसरे को दोयात्मकता से परखना स्वाभाविक ही है। इस वाद के तहत अनुवाद की प्रक्रिया को निम्नलिखित बिंदुओं पर परखा जा सकता है-

1. प्रतिस्थापन
2. पुनरावृत्ति
3. स्थानापन्न
4. सादृश्यता
5. प्रत्यायुक्ति

6. नकल
7. प्रतिनिधित्व
8. द्विगुणीकरण
9. प्रतीकात्मक
10. विरोधात्मक

यह पुनः भली-भाँति अंकित, चित्रित, प्रस्तुत और अर्पित करने की प्रक्रिया है। उक्त स्थिति मे इस प्रक्रिया में दोरंगापन, कपटाचारी, धोखेबाजी, प्रपंच जैसी बातें अस्वाभाविक नहीं दिखती है। भाषा, संकेत और प्रतीक के अंतर्संबधों में प्रतिनिधित्व स्थाई भाव है और यह सामाजिक संगठन, राजनीतिक संरचना और अंदरूनी फलकों से भी जुड़े हैं। यहाँ तक कहा गया है कि भाषा ही सभी तरह के प्रतिनिधित्वों को संचालित करती है। संरचनावादियों या आधुनिकतावादियों के समय, इतिहास, लेखक, पाठ और पाठक संबंधित मान्यताएँ अनुवाद को स्वाभाविक तौर पर बोझिल बनातीं हैं, क्योंकि समय निर्धारित, मापनीय एवं आरेखीय है। इतिहास वर्तमान को समझने के लिए आवश्यक है, यह यथार्थवान भूत का ही यथार्थ है, जो जाननेयोग्य एवं मानवीय है। इतिहास अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह समयानुसार मानवीय संस्कृति की व्याख्या करने में सक्षम है, साथ ही प्राचीनता की समझ भी इसमें होती है।

संरचनावाद में पाठ, पाठक एवं लेखक

पाठ

पाठ लेखक द्वारा निर्धारित होता है। यह ज्ञानयोग्य विचार का संचयन है। विशेष संदेश का प्रवाचन है। हर पाठ अपने आप में स्वतंत्र होता है। “A series of form produced by the institution of literature and the discursive codes of culture (Culler 1983: 82)। इसमें विशिष्ट लक्ष्य और भाव निहित होता है। कुछ छिपा भी होता है। लेखन के बाद स्वतंत्रता की प्राप्ति निर्णित होती है। पाठ पठनीय है, आदरणीय है अतः सदैव श्रद्धेय होता है।

पाठक

यह एक विनम्र श्रोता है, क्योंकि सिर्फ पाठ को सुनता है। पाठक को पाठ की सहज समझ होनी चाहिए। इसमें पाठक तटस्थ होता है। पाठक को माना हुआ समझा जाता था। संप्रेषण की प्रक्रिया में पाठक, लेखक और पाठ के बीच सीधा और निर्धारित संबंध होता है। पाठक संवाद की प्रक्रिया में अंतिम लक्ष्य है। यह कभी भी निर्धारक की भूमिका में नहीं होता। संरचनावाद में पाठ द्वितीयक होता है, क्योंकि केंद्र में लेखक होता है। अर्थ पर पाठक का अधिकार नहीं होता है।

लेखक

संरचनावाद में लेखक व्यक्तिगत इरादों और अभिप्रेरणाओं से संचालित मानव है। लेखक की भूमिकाओं के बारे में आम सहमति होती है। अर्थ-निर्धारण का अधिकार सिर्फ उसी के पास होता है। लेखक लिखने वाला तो होता है, निर्धारक भी यही होता है। लेखक की भूमिका आम मानव से अधिक है। यह एक एजेंट के समान होता है, जो जिस रूप में, जैसे भी, जहाँ भी, जिसके लिए भी संदेश को बना और निर्धारित कर सकता है। लेखक एक महामानव है, क्योंकि पूज्यनीय होता है। लेखन बौद्धिकता की उपज है, अतः लेखक एक बौद्धिक मानव है, जिसकी बातें समाज में निश्चित तौर पर सुनी जानी चाहिए। समाज में इनकी प्रतिष्ठा सामान्य से कहीं अधिक होती है। अर्थ का निर्धारक सिर्फ लेखक होता है। स्किनर (1969) ने इसे Arbiter of meaning कहा है। लेखक पाठ के माध्यम से अपनी इच्छाओं को व्यक्त कर चुका होता है, अतः अर्थ जानने के लिए पाठक को कुछ अलग से जानने की जरूरत नहीं रह जाती है। समाज का सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति होने के कारण लेखक की भूमिका लोगों को शिक्षित करना, नैतिक आचरण का पाठ पढ़ाना और पाठक का मनोविनोद करना है। अगर पाठ की सच्ची समझ पैदा करनी हो, तो लेखक की पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक होता है। लेखक जिस किसी का चयन करता है, वह सही और निर्धारित हो जाता है (वाउमन; 1987)। यह समाज को वैधानिकता प्रदान करने वाला होता है। साहित्यिक लेखक को इसके पहले इतनी अहमियत नहीं दी गई थी। लेखक की अपनी आवाज होती है, जिसे समाज आदरपूर्वक स्वीकार करता है। उक्त स्थिति में अनुवादक द्वितीयक होता है।

चुनौतियाँ

संरचनावाद को अब तक कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा है, जिसमें मुख्य रूप से तीन की चर्चा करना आवश्यक है-

1. चाम्सकीय व्याकरण
2. भाषा की प्रकार्यपरतावादी दृष्टिकोण
3. उत्तरसंरचनावाद

उत्तरसंरचनावाद और चाम्सकीय व्याकरण ने अनुवाद की मुश्किलें बहुत हद तक कम कर दीं। गौरलतलब है कि दोनों सिद्धांतों की मान्यताएँ संरचनावाद के विमुख ही फलित हुई है। सार्वभौमिकता के सिद्धांत से अनुवाद-कार्य को अतिरिक्त प्रेरणा मिलती है। अनुवाद के संज्ञानात्मक संभाव्य के समय चाम्सकीय मॉडल अत्यंत व्यापक हो जाता है। भाषा की सार्वभौमिक सत्ता की पेशगी ने इस की प्रक्रिया में सार्थक संभाव्य के सैद्धांतिक पक्षों को पुष्ट किया। लेकिन इस सिद्धांत से अध्ययन के क्षेत्र में अंतर-अनुशीलता का इजाफा नहीं होता है। निश्चित तौर पर इस मॉडल से स्वतंत्रता की अनुभूति सृजित हुई। लेकिन अत्यंत औपचारिक और ऐश्वर्यवादी होने के कारण यह अनुवाद के लिए अनेकांगी नहीं बन सका। इसने इस क्षेत्र में अपनी बढ़त हासिल नहीं कर सकी। इसलिए चाम्सकीय मॉडल ने जल्द ही अपनी शाख खो दी।

निष्कर्ष

संरचनावाद और अनुवाद के बारे में बहुत बात कही चा चुकी हैं, फिर भी नवभाषिक लोक-व्यवस्था के अंतर्गत संरचनावाद को नए तरीके से समझने की आवश्यकता है। बहरहाल उत्तर-उत्तर आधुनिकता एवं तरल आधुनिकता के इस दौर में संरचनावाद आज लगभग पराजित है। हालाँकि भारत जैसे बहुभाषी देश में संरचनावाद की अपनी मर्यादा बनी हुई है।

संदर्भिका

- Cullar, J. (1983) On Deconstruction, London; Routledge.
- Nida, E. (1964) Towards Science of Translating. Leiden; E.J. Brill.
- Sapir, E. (1963) Language, London; Rupert Hart-Davis.

- Saussure, F. (1916/1983) Course in General Linguistics, London; Duekward.
- Vinay, J. P. and J. Darbelnet (1958/1995) Stylistique comparée du français et de l'anglais. Méthode de traduction, Paris.

Citation: सिंह, शैलेन्द्र कुमार (2013). संरचनावाद और अनुवाद, HindiTech: A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal, 4 (2), 18-31. URL: https://hinditech.in/sanrachanavad-aur-anuvad/